International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(6): 187-189

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(6): 187-189
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 18-09-2016
Accepted: 19-10-2016

डॉ0 लज्जा पन्त (भट्ट)
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, डी0एस0बी0 परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

कु0 दिव्या जोशी
शोधच्छात्रा– संस्कृत विभाग, डी0एस0बी0 परिसर, कुमाऊँ, विश्वविद्यालय, नैनीताल

Correspondence
डॉ0 लज्जा पन्त (भट्ट)
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, डी0एस0बी0 परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

लिङ्गमहापुराण में योग–साधना निरूपण

डॉ0 लज्जा पन्त (भट्ट), कु0 दिव्या जोशी

भारतीय दार्शनिक परम्परा में 'योग' का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। 'योग' वह है, जिसके द्वारा परम सत्य को देखा जाता है। भारतीय दार्शनिक परम्परा में योग के विभिन्न प्रकार उपलब्ध होते हैं, जैसे ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग, राजयोग, हठयोग आदि। योग का आध्यात्मिक क्षेत्र में अर्थ है जीवात्मा का परमात्मा से मिलन या आत्मा का अपने स्वरूप में स्थित हो जाना। पतञ्जलि ने योगसूत्र में कहा है– तदा दृष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् [1] अर्थात् योग की पूर्णता पर दृष्टा (आत्मा) अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, आत्मा की यह स्वरूपावस्थिति चित्त के शान्त [2] होने पर ही होती है। योग विद्या के बीज हमें वैदिक संहिताओं में मिलते हैं, जो स्वाभाविक हैं। क्योंकि वेद भारतीय दर्शन, धर्म तथा संस्कृति के मूल स्रोत हैं, किन्तु वैदिक परम्परा से सम्बन्धित 'योग' का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता न ही योग का कोई दार्शनिक सम्प्रदाय उस समय विद्यमान प्रतीत होता है। भारतीय दार्शनिकों के अनुसार इस विश्व में तीन तत्त्व (ईश्वर, जीव तथा प्रकृति) ही अनादि और नित्य है [3]। ईश्वर द्वारा जीवों के भोग के लिए प्रकृति के द्वारा इस समस्त चराचर जगत् की रचना की गई है। जगत् के समस्त जीवों में एक मात्र मनुष्य ही कर्ता तथा भोक्ता दोनों है। अन्य सभी जीव केवल भोक्ता मात्र हैं। इसीलिए मनुष्य का उत्तरदायित्व हो जाता है कि इस प्रकार कर्म करे कि वह शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करता हुआ अपने मूल परमपिता परमात्मा तक पहुँचे। इसी में स्वयं उसका तथा अन्य प्राणियों का कल्याण है। धर्म ही योग के माध्यम से आत्मदर्शन का साधन है– 'अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्' [4]

'योग' के प्रवर्तक महर्षि पतञ्जलि को माना जाता है, क्योंकि इन्होंने सर्वप्रथम प्राचीन ग्रन्थों में यत्र–तत्र बिखरे योग विचारों को संग्रहित कर अपने मौलिक चिन्तन तथा प्रतिभा से 'योगदर्शन' को प्रस्थापित किया तथा 'योगसूत्र' की रचना की। महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित यमनियमादि अष्टाङ्ग योग की निरन्तर साधना करने से साधक, प्राणवान्, बलवान्, आयुष्मान् तथा परमात्मा का प्यारा बन जाता है।

योग 'युज्' धातु से बना है। जिसका अर्थ जोड़ना है। आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने के लिए की गई साधना ही योग है। ऋग्वेद में कहा है– 'युज्यते अनेन इति योगः [5] इससे प्रतीत होता है कि वैदिक ऋषि योग विद्या से परिचित थे तथा शक्ति की प्राप्ति अथवा लक्ष्य प्राप्ति हेतु 'योग' का अनुसरण करने का परामर्श लोगों को दिया करते थे। 'योगदर्शन' में महर्षि पतञ्जलि ने योग का लक्षण करते हुए कहा है कि 'चित्त की वृत्तियों' का निरोध योग है (योगश्चित्त वृत्तिर्निरोधः– योगसूत्र 1/2) जिसके परिणामस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' योग का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें योग की कई परिभाषाएँ दी गई हैं। कर्मयोग की परिभाषा देते हुए कहा गया है– 'कर्मों में कुशलता योग है' [6]। 'गीता' में ही दूसरे स्थान पर कहा गया है– 'समत्व ही योग कहलाता है [7]। योग की एक अन्य परिभाषा देते हुए 'गीता' में कहा गया है– योग दुःख रूप संसार के संयोग से रहित है– ''तं विद्यात् दुःसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्'' (श्रीमद्भगवद्गीता 6/23)

'मनुस्मृति' में कहा गया है–

> दह्यन्ते ध्मायमानां धातूनां हि यथा मलाः।
> तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।। [8]

जैसे धातु को अग्नि में तपाकर शुद्ध कर लिया जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियों को प्राणायाम से शुद्ध किया जाता है। विवके ज्ञान से अज्ञान का अवकाश (पर्दा) उठाकर– ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्' [9] साधक का मन धारणा के योग्य बनता है। [10]

लिङ्गमहापुराण में योग का उल्लेख करते हुए कहा है– योग से बढ़कर मानव के लिए दूसरा कोई पवित्र कार्य नहीं है–

भवेद्योगोऽप्रमत्तस्य योगो हि परमं बलम्।
न हि योगात्परं किंचित्रराणां दृश्यते शुभम्।। [11]

योगी वह होता है, जिसे संसार से कोई माया मोह नहीं होता है। वह ध्यान योग में तल्लीन रहता है, वह योगी अपने योग द्वारा ईश्वर को भी पहचान लेता है। लिङ्गमहापुराण में कहा है–

युक्तो योगेन चेशानं सर्वतश्च सनातनम्।
पुरुषं सर्वभूतानां तं विद्वान्न विमुह्यति।। (लिङ्गमहा0 88/44)

योग से युक्त सनातन पुरुष को, सभी प्राणियों को जानने वाले को कोई मोह नहीं रहता है। ज्ञानी भी 'योगी' ही कहलाता है। वह योग के ज्ञान से ही अध्यात्म्य चिन्तक ब्राह्मण ऋक्, साम, यजुष के मंत्रों अपितु वेदों उपनिषदों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।(लिङ्ग– 91/67)
ज्ञानध्यान रूपी अमृत से ही संसार रूपी विष से संतप्त लोगों का प्रतिकार बताया गया है। लिङ्गमहापुराण में अष्टाङ्योग का निरूपण करते हुए योग के उत्तम स्थान को बताया गया है–

गलादधोवितस्त्या यत्राभेरूपरिष्ठोत्तमम्।
योगस्थानमधो नाभेरावर्त मध्यमं भ्रुवोः।। [12]

गले के नीचे और नाभि के ऊपर योग का उत्तम स्थान है। नाभि के नीचे तथा भौंहो के बीच भी योग का उत्तम स्थान है, योग से ही मन की एकाग्रता सम्भव होती है–

सर्वार्थज्ञाननिष्पत्तिरात्मनो योग उच्यते।(लिङ्ग 8/3)

आत्मा में उद्भूत सभी विषयों का ज्ञान ही योग है, इन्द्रियों की गतिविधियों से विरत रहकर पाप को जलाना चाहिए।
लिङ्गमहापुराण में इन्द्रियनिरोध को योग प्राप्ति का साधन बताया है, ये साधन आठ प्रकार के हैं–

यमस्तु प्रथमः द्वितीयो नियमस्तथा।
तृतीयामासनं प्रोक्तं प्राणायामस्ततः परम्।।
प्रत्याहारः पंचमो वै धारणा च ततः परा।
ध्यानं सप्तमित्युक्तं समाधिस्त्वष्टमः स्मृतः।।

तप से विषयों का त्याग करना ही यम है। अहिंसा यम का प्रथम लक्षण है, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (संचय न करना) अन्य हेतु हैं। योगियों को अमृत्व की प्राप्ति हेतु हमेशा त्याग करना चाहिए। जो विरक्त नहीं होता वह बार–बार विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। जो संसार में सभी प्रकार से राग का त्याग करे, उसे योगी कहते हैं–

निवृतः सर्वसंगेम्यो युक्तो योगी प्रकीर्तितः। [14]

लिङ्ग महापुराण के अन्तर्गत शिव से सम्बन्धित पाशुपत योग का विस्तार से वर्णन किया है। यदि कोई व्यक्ति एक दिन भी पाशुपत योग पूर्ण कर ले तो यति हो जाता है। अतः व्यक्ति को सबकुछ त्यागकर पाशुपतयोग करना चाहिए–

योगे पाशुपते सम्यक् दिनमेकं यतिर्भवेत्।
तस्मात्सर्वं परित्यज्यचरेतत्पाशुपतं व्रतम्।।(लिङ्ग0 88/7)

यह पाशुपतयोग सांसारिक बन्धन काटकर ज्ञानमार्ग को प्रकाशित कर मुक्ति प्रदान करने वाला है– 'एवं पाशुपतं योगं मोक्षसिद्धि प्रदायकम्[15] इस योग को करने वाला ही आठ सिद्धियों को प्राप्त करता है, जो एक करोड़ यज्ञों से भी प्राप्त नहीं हो सकती। ये आठ सिद्धियाँ हैं–

अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च।
प्राकाम्यं चैव सर्वत्र ईशित्वं चैव सर्वतः।।
वशित्वमथ सर्वत्र यत्र कामावसायिता।
तच्चापि त्रिविधं ज्ञेयमैश्वर्यं सार्वकामिकम्।। [16]

अणिमा (सूक्ष्मता), लघिमा (हल्कापन), महिमा (महानता), प्राप्ति (कुछ भी प्राप्त करने की क्षमता), प्राकाम्य (दुर्दम्य इच्छा), ईशित्व (सभी वस्तुओं पर स्वामिता), वशित्व (सबको वश में करना), कामावसायिता (सब कुछ इच्छा पर घटित होना) इस ऐश्वर्य को हर कोई चाहता है। ऐश्वर्य क्रमशः सूक्ष्मत्तर तथा महत्तर होते हैं। उत्तम योग तथा अबाधित ऐश्वर्य प्राप्त करके मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है। वहीं महत्तम सूक्ष्म लक्ष्य है, पाशुपत योग इस प्रकार जाना गया है (लिङ्ग0 88/29–30) 'योगेन पश्येन्न च चक्षुषा' अर्थात् जो आँखों से नहीं योग से देखा जा सकता है। यह पाशुपत योग अपवर्ग का फल देने वाला शिव सायुज्य का कारण है– 'स्वर्गापवर्गफलदं शिवसायुज्यकारणम्'।
जो मद, मोह, राग, तामस और राजस् दोष से रहित स्वभाव वाला है, वह पाशुपत योग का सदैव भक्त होता है।
योग के द्वारा योगी अद्भुत लीलाएँ देख लेते हैं। लिङ्गमहापुराण में योग के विषय में कहा है–

तेजोरूपाणि सर्वाणि सर्वं पश्यति योगवित्।
देवबिम्बन्यनेकानि विमानानि सहस्रशः।। [17]

योग को जानने वाला सहस्रों देवताओं को उनके वैभवपूर्ण विमानों सहित देख सकता है, प्रत्येक वस्तु उसके ज्ञान में आ सकती है।
लिङ्गमहापुराण के उत्तर भाग के बीसवें अध्याय में लिखा है–

योगिनां दर्शनाद्वापि स्पर्शनाद्भाषणादपि।
सद्यः संजायते चाज्ञा पाशोपक्षयकारिणी।।

योगियों के दर्शन तथा भाषण से भी पापक्षय करने वाली आज्ञा उत्पन्न होती है।
'लिङ्ग महापुराण' में योग के विषय में देवी पार्वती ने शिव से पूछा था– वह दिव्य मोक्षदायक ज्ञान कैसा है, जिससे प्राणी बन्धन से मुक्त हो जाता है। तब शिवजी द्वारा योग के विभिन्न प्रकार बताये गये–

प्रथमो मंत्रयोगश्च स्पर्शयोगो द्वितीयकः।।
भावयोगस्तृतीयः स्यादभावश्च चतुर्थकः।
सर्वोत्तमो महायोगः पंचमः परिकीर्तितः।।

1. मन्त्र योगः ध्यान से युक्त तथा अभ्यास, ध्यान के साथ मंत्रों का जप मन्त्र योग है।

2. स्पर्श योगः रक्त वाहिनी नाड़ियों को शुद्ध करने वाले रेचक प्राणायाम द्वारा रक्तवाहिनी नाड़ी को शुद्ध करना होता है तथा प्राणवायु को समस्त व्यस्त योग से वश में करना होता है। कुम्भ, प्राणायाम, वायु को रोकने का अभ्यास तीन धारणाओं के द्वारा संदीप्त को 'स्पर्शयोग' कहा जाता है।

3. भाव योगः जो मन्त्र तथा स्पर्श से अलग है किन्तु महादेव पर अवलम्बित हो उसे भावयोग कहते हैं। इसमें बाहर तथा भीतर सर्वत्र महादेव के प्रयत्नाश्रित स्फुरण और संहरण की अभिव्यक्ति होती है।

4. अभाव योगः विश्व के चर और अचर प्राणी जिस भाव में विलीन हो जाते हैं तथा शून्य स्वरूप होते हैं। चित्त का निर्वाण करने वाले उस योग को अभाव योग कहा जाता है।

5. महायोगः वह ध्यान जिसमें शुद्ध रूप बिना किसी रंग के दिखाई देता है, जो शुभ है, शुद्ध है, स्वतन्त्र है तथा अनिर्दश्य है। जो प्रकाशमय है तथा स्वयं वेद्य है, उसे महायोग कहते हैं–

सर्वावरणनिर्मुक्तो ह्यचित्तः स्वरसेन तु।
ज्ञेयमेतत्समाख्यातमग्रह्यमपि दैवतैः।। [18]

महादेव कहते हैं– योगी यौगिक अमृत पीने के बाद ब्रह्म को जानने वालों में उत्तम तथा मुक्त हो जाता है। इस प्रकार पाशुपत योग सबसे उत्तम है।

योग मुख्य रूप से एक अवस्था विशेष का नाम है, जिसमें आत्मा अपने स्वरूप में स्थित होता है। जिस प्रकार योग का विस्तृत वर्णन लिङ्ग महापुराण में मिलता है, अन्य पुराणों में दुर्लभ है।

सहायक सन्दर्भ

1. योगसूत्र 1/3।
2. योगश्चित्तवृत्तिः निरोधः, योगसूत्र 1/2।
3. सत्यार्थप्रकाश– महर्षि दयानन्द।
4. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/2।
5. ऋग्वेद 81/1।
6. योगः कर्मसु कौशलम्– श्रीमद्भगवद्गीता 2/50।
7. समत्वं योग उच्यते– वही 2/48।
8. मनुस्मृति 6/71।
9. योगदर्शन 2/52।
10. वही 2/53।
11. लिङ्गमहापुराण (पूर्वभाग), 90/1।
12. वही 8/2।
13. वही 8/8, 26।
14. वही 92/7–8।
15. वही 88/7–8।
16. वही 88/9–10।
17. वही 9/62।
18. लिङ्गमहापुराण (उत्तर भाग), 55/7, 9।